

हिन्दी भाषा के प्रश्न और रामवृक्ष बेनीपुरी

विनोद आजाद (शोधार्थी)

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

भाषा मनुष्य होने का सबसे प्रत्यक्ष प्रमाण है। भाषा के बिना मनुष्य नहीं होता, पशु से मनुष्य के विकास में भाषा ही वह सीढ़ी है जिसको पार कर वह मनुष्यत्व प्राप्त करता है। वस्तुतः भाषा एक सामाजिक व्यवस्था है। भाषा के बिना समाज में अपनी अस्मिता की पहचान नहीं हो सकती। इसलिए सबसे पहले भाषा अपने आप को पहचानने का साधन है। अगर किसी समाज को उसकी भाषा से काट दें तो यह निश्चित है कि हम उसकी अस्मिता को खंडित कर रहे हैं। भाषा मूल्यों की सृष्टि करना संभव बनाती है। मनुष्य की जिजीविषा ही अंतिम और स्वयंसिद्ध तर्क होता है, जीने के लिए। मनुष्य भाषा से ऐसे मूल्यों की सृष्टि करता है, जिसके लिए वह जीता है। भाषा एक समय संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन है। कभी भाषा समाज को पारिभाषित करती है, तो कभी समाज भाषा को। भाषा और समाज का नितांत गहरा संबंध है। समाज की हर झलक, सुख, दुःख, पीड़ा, अवसाद, खुशी, हास्य, उल्लास भाषा के माध्यम से मुखरित होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में साहित्यकार और भाषाविद रामवृक्ष बेनीपुरी के भाषा संबंधी प्रश्नों पर विचार किया गया है।

भूमिका

'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी' जी एक समाज चेतस रचनाकार थे। वे भाषा की शक्ति और सामर्थ्य को समझते थे। साथ ही एक बहुभाषी, बहुसंस्कृति भारत की भाषिक सीमाओं से भी अवगत थे। इसलिए भाषा संबंधी विचारों में वे किसी भी आग्रह-दुराग्रह के प्रति सतर्क थे। ब्रिटिश साम्राज्यवादी इस तथ्य को जानते थे कि भाषा अनुभूति को अभिव्यक्ति करने का माध्यम भर नहीं है, इससे आगे बढ़कर राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने वाली मजबूत डोर है। 'किसी भी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति नष्ट करना हो तो उसकी भाषा नष्ट कर दो।' इस सूत्र को भारत पर शासन करने वाले ब्रिटिशर्स ने भलीभाँति समझा। इसने दूरगामी नीति के तहत भारतीय भाषाओं की धजियाँ उड़ाकर अपनी भाषा और

अपना हित लाद दिया। लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन जब जन-मानस का आंदोलन बना तो 'हिन्दी' उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक एकता, सौहार्द्र और संघर्ष की भाषा के रूप में उपस्थित हुई। हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में उदय की बेनीपुरी जी सूक्ष्म विवेचना प्रस्तुत करते हैं। मुसलमानी शासन खत्म होने के बाद, अंगरेजी राज के साथ, जब राष्ट्रीयता की लहर फैली, इस भूभाग के लोगों ने पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए, उर्दू की शुद्धि करके हिंदी नाम से एक ऐसी भाषा बनायी, जो क्रमशः इस बड़े भू-भाग के गाँव-गाँव में प्रवेश पा गई बदले में हिंदी ने इन सभी बोलियों के साहित्य को अपना कहकर अंगीकार किया। विद्यापति, कबीर, तुलसी, सूर, पद्माकर, बिहारी, मीराबाई, चंदबरदाई, गुरु-नानक देव सबको हिंदी ने अपना कवि माना और इनकी रचनाओं को अपने साहित्य भंडार में लेकर अपने

को कृतकृत्य किया.. अपनी-अपनी बोलियों के छोटे-छोटे घेरे को तोड़कर और हिंदी को अपनी समान भाषा अंगीकार कर, हिन्दी भाषियों ने इतिहास के लिए एक अद्भुत घटना की सृष्टि की है।¹

बेनीपुरी जी और हिंदी भाषा और लिपि

बेनीपुरी जी हिंदी भाषा के संदर्भ में उभरे नये खतरों की ओर भी संकेत करते हैं। हिंदी के विरुद्ध हो रहे षडयंत्र के प्रति भी सावधान करते हैं। हिंदी के इस बड़े भू-भाग और विशाल परिवार को देखकर कुछ अन्य भाषा-भाषियों के मन में कभी-कभी द्वेष पैदा हो जाए तो असंभव नहीं। उनका द्वेष भिन्न-भिन्न रूपों में प्रायः प्रकट होता रहता है। किंतु एक बड़ा षडयंत्र गुपचुप चल रहा है, उसके फेर में हिंदी के कई गणमान्य आचार्य भी आसानी से पड़ जाया करते हैं। यह षडयंत्र यह है कि इस विस्तृत हिंदी-भू-भाग की बोलियों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे अपने लिए अलग स्थान की माँग करें और यों धीरे-धीरे यह हिन्दी क्षेत्र अनेक टुकड़ों में बंट जाए।... ऐसा करना सौ वर्षों के इतिहास को पीछे मोड़ना और सदियों के समन्वयात्मक प्रयत्न को तोड़ना है... इन बोलियों के साहित्य का रक्षण हो, इसके जीवंत साहित्यिक तत्वों को हिंदी में लाया जाय, इनके सबल, स्वस्थ और सुघड़ शब्दों और मुहावरों को खुलकर अपनाया जाए, हम इसके विरोधी नहीं, बल्कि प्रबल समर्थक हैं। किन्तु इन बोलियों को हिंदी के विरुद्ध खड़ा करना, हम एक गर्हित पाप मानते हैं।² बेनीपुरी जी हिंदी को सामर्थ्यवान बनाने के आग्रही थे। इनका मानना था कि भारतवर्ष की एकता के लिए यह अनिवार्य था। परन्तु इन्हें भय था कि हिंदी को सामर्थ्यवान बनाने के नाम पर ऐसी भाषा गढ़ी जा रही है, जिसे हिंदी भाषा जनता भी नहीं

समझ पा रही है। वे कहते हैं अरे भाई, शेली और कीट्स की भाषा नहीं हो, तो चर्चिल और एटली की भाषा भी तो हो। मान लिया तुम्हें तुलसी या मैथिलीशरण गुप्त की भाषा से दुश्मनी हो, तो फिर नेहरू या राजेन्द्र प्रसाद की भाषा ही हमें दो। यह कौन-सी भाषा तुम गढ़ रहे हो।³ उनका मानना था राजभाषा के रूप में जो भाषा गढ़ी जा रही है, वह दिन-दिन जनता से दूर होती जा रही है। वो चेतावनी देते हैं कि कभी संस्कृत और पफारसी भी सत्ता की भाषा थी, परन्तु लोक से दूर होने के कारण उसकी क्या दुर्गति हुई ? बेनीपुरी जी लोकभाषा को अपनाए की बात करते हैं। इस संदर्भ में संस्कृत का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- संस्कृत खुद एक शिष्टभाषा थी, लेकिन उसके साथ एक बहुप्रचलित भाषा भी थी, जिसकी झलक संस्कृत के नाटकों के पढ़ने से हमें मिलती है। उन नाटकों में स्त्री-पात्रों एवं साधरण-जनों की हमेशा से ही एक अलग भाषा रखी गई है। मानों यह बात ही पुकार-पुकारकर कहती है कि संस्कृत मुड़ीभर पढ़े-लिखे लोगों की बनावटी भाषा थी और इसलिए संस्कृत कहलाती थी। मानवता का ज्यादा हिस्सा-पूरा स्त्री समाज-उस भाषा से दूर था और सारी की सारी जनता भी इससे कोई सरोकार नहीं रखती थी। इनकी एक अलग भाषा थी, जो स्वाभाविक भाषा होने के कारण ही प्राकृत कहलाती थी। गौतम बुद्ध ने इसी साधरण जनों की भाषा, गाँव की, कुटिरों की भाषा, 'पल्लियों की भाषा' को अपनाया और पल्लियों की भाषा होने के कारण ही 'पाली' कहलायी। बुद्ध के बाद जो सिद्ध और संत हुए, उन्होंने इस परम्परा को और आगे बढ़ाया। फलतः हम हिंदी का जन्म होता हुआ देखते हैं। हिंदी सिद्धों की भाषा है, संतों की भाषा है, साधरण जनों की

भाषा है, इसलिए इसकी सरलता, सुगमता, सुघरता और अमरता स्वयंसिद्ध है।⁴ बेनीपुरी जी हिंदी को सरल, सुबोध, सुगम बनाने के हामी रहे हैं। वे हिन्दी को एक जनभाषा एक साधुभाषा के रूप में विकसित करने के हिमायती रहे हैं। उनका मानना है कि शासन और शासकों की भाषा मात्रा बनकर रहने से भाषा की मृत्यु निश्चित है। वो कहते हैं वाल्मीकि और व्यास की भाषा जब जनता से दूर होकर जी नहीं सकी, तो फिर हमारी आपकी भाषा क्या खाक जिंदा रह सकेगी।⁵ बेनीपुरी जी हिंदी को कैसे जनभाषा बनाया जाए, उस पर महत्वपूर्ण सुझाव भी देते हैं। हमारे लोकजीवन में हजारों के हजारों शब्द परे हैं। टकसालों में सिक्के ढाले जा सकते हैं भाषा नहीं। भाषा तो हमारे खेत-खलिहानों, मजदूरों, कामगारों के जिहना से निकलती है। मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगू, पंजाबी, बंगला में ऐसे कई प्रचलित शब्द हैं जिन्हें हम ले सकते हैं। जो शब्द जनता ने पचा लिया है, उसके लिए नया शब्द ढूँढने और बनाने की चेष्टा को बेनीपुरी जी 'पागलपन' मानते हैं। हमें और सरकार को भी समझ लेना है कि भाषा या साहित्य का निर्माण सेक्रेटेरियट में नहीं किया जा सकता। भाषा गढ़ी जाती है जनता की जिहवा पर, हाँ, जनता की खुरदरी, मोटी जिहवा पर! कुछ ऊँचे वैज्ञानिक शब्दों को छोड़ दीजिए, तो हजारों-लाखों शब्द हमारे देहात में भरे पड़े हैं। ...किन्तु हम इनकी ओर ध्यान न देकर अंग्रेजी और संस्कृत के कोषों के भ्रमजाल में पड़े हैं।⁶ सच तो यह है कि हिंदी को संभ्रांत बनाने का राजसी षडयंत्र चल रहा है। सत्ता में संलग्न मठाधीशों का अभिजात्य अहंकार इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि जनता की भाषा में शासन और सत्तातंत्र संचालित हो इससे

उनका गौरव नष्ट होने का खतरा है। इस ओर संकेत करते हुए बेनीपुरी जी कहते हैं बात स्पष्ट है कि क्रांति तो जनता करती है, किन्तु जनता के प्रतिनिधि के नाम पर जो लोग सत्तारूढ़ होते हैं, वे जनता के प्रतिनिधि भले ही हों, जनता के लोग नहीं होते, सत्ता प्राप्त होते ही उनका अभिजात्य अहंकार उद्दीप्त हो जाता है और वे अपना रहन-सहन, भूषा-भाषा जनता पर लादना शुरू कर देते हैं। 'गँवार' लोगों का अनुकरण और अनुसरण भला वे करें?'⁷

भाषा किसी भी नवोदित राष्ट्र के आशा, आकांक्षा के प्रकटीकरण का सबसे सशक्त माध्यम होती है। इसका विकास भी आम, जन के सपनों के अनुकरण के आधार पर होना चाहिए। भाषा व साहित्य स्वतंत्र रहकर ही नवनिर्माण एवं नवसृजन करने में सक्षम हो सकेगा। भाषा व साहित्य को लोक जीवन में गहरा उतरना होगा। बेनीपुरी जी कहते हैं, साहित्य को अगर बहुरंगी बनाना है, सतरंगी बनाना है तो उसे रंगों के लिए जन-जीवन में प्रवेश करना है। अजन्ता की अपूर्व चित्राकारी के लिए उसके कलाकारों ने उसी के आस-पास की मिट्टी से, पत्थर से, पेड़ों की जड़ों से, छाल से, पौधे की पत्तियों से, पफूलों से रंग संचित किये। हमारे साहित्य के लिए जो रंग चाहिए, वे हमारे चारों ओर, जन-जीवन में प्रचुरता से ओतप्रोत हैं- आँखें चाहिए, उसे देखें, पैर चाहिए, जो उन तक पहुँचें, हाथ चाहिए, जो उनके प्रयोग करें।⁸

बेनीपुरी जी भाषा के साथ-साथ लिपि के प्रति भी सचेष्ट थे। भाषा को लिखित रूप से प्रकट करने का माध्यम लिपि ही है। किसी भी भाषा के लिए उसकी लिपि का विशेष महत्व है। अगर लिपि सरल, सुग्राह्य व वैज्ञानिक है तो वह भाषा भी सरल, सुग्राह्य और वैज्ञानिक होगी। बेनीपुरी जी



की चिंता है कि भाषा के साथ-साथ लिपि के साथ भी खिलवाड़ किया जा रहा है वो भी लिपि को वैज्ञानिक बनाने के नाम पर हमारी भाषा छीनी जा रही है, हमारी लिपि छीनी जा रही है। राष्ट्रभाषा के नाम पर, लिपि सुधार के नाम पर हमसे परम्परा को ही छीन लिया जा रहा है, जो हमारी पैतृक सम्पत्ति थी। एक ऐसी लिपि गढ़ी जा रही है कि यदि उसका प्रचार हुआ तो दूसरी पुश्त से ही प्रेमचन्द से लेकर सरहण तक का सारा साहित्य हमारे लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' हो जायेगा।⁹

निष्कर्ष

बेनीपुरी जी के भाषा संबंधी विचारों से स्पष्ट होता है कि एक ओर वो हिन्दी को जनभाषा बनाने के पक्ष में हैं तो दूसरी ओर सभी भारतीय भाषाओं कम प्रचलित शब्दों को अंगीकृत कर इसे सर्वग्राह्य भी बनाना चाहते हैं। भाषा आजाद-भारत जन-जीवन के सपनों को तभी साकार कर पायेगा, जब लोक, साहित्य शासन और सत्ता की भाषा समान हो। बेनीपुरी जी एक ओर किसी भी भाषा के साम्राज्यवादी आकांक्षा को अस्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर हिंदी के अंदर से उठे षडयंत्रकारी एवं विभाजनवादी मंसूबों पर भी चोट करते हैं। बेनीपुरी जी अपने निजी जीवन रचनाकार एवं पत्राकार के रूप में स्वाधीन एवं समाजवाद के हिमायती हैं। इसी के अनुरूप इनका भाषा संबंधी दृष्टिकोण भी स्वाधीनता एवं जनभाषा के रूप में समाजवादी दृष्टिकोण का प्रतिफलन है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, रामविलास, *स्वाधीनता और समाजवाद*, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, स्वराज प्रकाशन, पृष्ठ 395
2. वही, पृष्ठ 396
3. वही, पृष्ठ 386

4. वही, पृष्ठ 375

5. वही, पृष्ठ 386

6. कपूर मस्तराम, *रामवृक्ष बेनीपुरी रचना संचयन, साहित्य अकादमी, दिल्ली, सन् 2000, पृष्ठ 593*

7. वही, पृष्ठ 593

8. वही, पृष्ठ 595

9. वही, पृष्ठ 612